

डॉ. घनश्याम आसूदाणी

महाराष्ट्र

भय से भव तक

उसके आँसू उसकी चीख़ों को भी मात दे रहे थे। वह किसी मछली-सी ज़मीन पर पड़ी तड़प रही थी। एक नीम बेहोशी-सी उसके समस्त मन-मस्तिष्क को सुन्न कर रही थी। उसका स्वयं पर कोई नियंत्रण नहीं रह गया था। ऐसी हालत उसकी इससे पहले कभी नहीं हुई थी।

उसे समझ में नहीं आ रहा था— यह भय था या दुख, जो उसे इस तरह दबोच रहा था। जाने कब से संचित भावनाएँ इकट्ठी होकर उसके विरुद्ध षड़यंत्र कर रही थीं।

यूँ मौत को उसने कई बार देखा है, बहुत करीब से देखा है। समय-असमय अपनों को, मित्रों को विदाई देनी ही पड़ती है। यही जीवन की रीत है।

हर बार, जब-जब वह किसी की मौत देखती है, तो अंदर से सिहर उठती है। अपना हो या पराया, हर मृत्यु उसे अंदर से हिला देती है। यह कोई आज की बात नहीं है। बचपन में जिस सरकारी क्वार्टर में वह रहती थी, उसके समीप ही श्मशान-घाट था। दिन हो या रात, उसे अपने बेडरूम की खिड़की से आग की लपटें दिख जाती थीं। कई बार रात के अँधेरे में वह उन जलते लावों से भयभीत होकर अपने छोटे हाथों से उन्हें दूर भगाने का प्रयत्न करती रहती थी। उस समय उसकी उम्र मुश्किल से छह-सात वर्ष की रही होगी। वह ज़िद करके अक्सर माँ को साथ सुला लेती थी, किन्तु थकी माँ को सोते ही नींद आ जाती थी। एक तरफ सोती हुई माँ और दूसरी तरफ धू-धू जलती हुई लाश; वह सारी रात आँखों ही में बिता देती थी।

तब से अब तक यह भय तिल-तिलकर बढ़ता ही चला गया था। पच्चीस साल की इस उम्र में मनोविज्ञान में स्नातकोत्तर डिग्री तक पढ़ाई करने के बाद वह यह भली-भाँति जानती है कि मौत जीवन की अंतिम परिणति है और यह भी कि ज़िन्दा इंसान मुर्दे से कहीं अधिक ख़तरनाक होता है। सब कुछ जानते हुए भी मन कमबख़्त मुर्दा देखते ही थर-थर काँपने लगता है।

उसका जी चाहता है, वह दादी से लिपटकर ख़ूब रोए। माँ से भी अधिक दादी के करीब थी वह। उसकी प्यारी दादी अब कैसे शून्य में अर्थहीन आँखों से ताक रही हैं। मैं जाऊँ, उनका हाथ पकड़ लूँ, उन्हें सहारा देकर उठाकर बिठा दूँ। बस फिर दादी बोलने-बतियाने लगेंगी। लेकिन यह क्या, दादी की ओर आँख उठाकर देखती है, तो वे सफ़ेद कफ़न ओढ़े निश्चेष्ट पड़ी हैं। डर उसकी नस-नस को घेर लेता है। वह अपनी ही दादी से डर रही है? अरे! इन्हीं की गोद में खेली है, खाई है। कैसी मूर्ख, कृतघ्न लड़की है! लानत है तेरे प्यार पर! अब जो दादी चली जाएँगी, तो फिर कभी लौटकर नहीं आएगी। उनसे लिपटकर ख़ूब बातें कर ले। अरे, अंतिम प्रणाम ही कर ले उन्हें। किन्तु नहीं, हाथ-पाँव दस-दस मन के हो गए हैं।

आँसू भरी धुँधली आँखों से देखती है। पिता ने आकर कंधे पर हाथ रखा है। कुछ कह रहे हैं, शायद। क्या कह रहे हैं; ठीक से सुन नहीं पा रही है। डर क्या कानों तक भी पहुँच गया है?

वह थरथराते हाथों से लकड़ियों को बाँधने का प्रयास करती है| रस्सी उसके हाथों से बार-बार छूट जाती है| अब



उसके आँसू किसी शांत, मौन नदी-से बह रहे हैं| कुछ अन्य लोग केवल उसका स्पर्शभर करवाकर अर्थी बाँध देते हैं|

पिता अब भी वहीं डटे हुए हैं| अब वे एक लाल कपड़ा उसे देते हैं| वे कुछ ऊँचे और कड़े स्वर में आदेश देते हैं, "दादी का कफ़न बिछाओ, अंजू| दादी को अंतिम यात्रा पर ले जाना है| यूँ बैठे-बैठे क्या ताक रही हो? उठो, अपनी दादी के साथ चलो| कंधा दो उन्हें| वे अपनी ही अंजू के कंधे पर सवार होकर गर्व से जाना चाहती हैं| अपनी दादी के लिए इतना भी नहीं करोगी, अंजू?"

अंजू हौले से लाल कपड़ा अर्थी की लकड़ियों पर बिछा देती है| पिता उसे फूलों से भरी टोकरी सौंपते हैं| वह धीरे-धीरे सारे फूल अर्थी पर फैला देती है|

अब उसे आँखों से स्पष्ट दिखाई दे रहा है| पिता की आवाज़ फिर सुनाई देती है| "चलो अंजू, समय हो गया है|"

अपने दो भाइयों तथा एक बहन के साथ वह भी 'राम नाम सत्य है' की ध्वनि के बीच दादी को अपने कंधों पर उठा लेती है| ये तो उसकी वही दादी हैं, जो अभी सुबह तक उससे बातें कर रही थीं| अब भी तो वे बोल ही रही हैं, "ज़रा संभलकर, अंजू| धीरे-धीरे चलो बेटा| कहीं ठोकर न लग जाए तुम्हें| मैं तो बूढ़ी हो गई हूँ, मेरा क्या है| तुम्हारे सामने पूरी जिंदगी पड़ी है| हमेशा संभलकर ही रहना|"

दादी को मुखाग्नि देकर कदम-कदम घर की ओर आते हुए अंजू को महसूस हो रहा है, दादी का हाथ अब भी उसके हाथ में है| उसका मन डर से नहीं, प्यार से भरा हुआ है| जीवन और मृत्यु शनैः-शनैः एकाकार होते जा रहे हैं|